मुसलमानों की बदहाली
का
अस्ल इलाज

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान निहायत रहमवाला है।'

दो शब्द

बहुत से मुसलमान यह समझते हैं कि दुनिया में इज़्ज़त और कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि उनके पास ख़ूब माल व दौलत हो। और इस माल व दौलत को हासिल करने के लिए उन्हें हराम व हलाल का ख़याल किए बिना 'चलो तुम उधर को जिधर की हवा हो' की नीति पर चलना चाहिए। उन मुसलमानों का यह भी सोचना है कि अगर ऐसा न किया गया तो मुसलमान दुनिया में पिछड़ जाएँगे और बदहाली का शिकार हो जाएँगे। इसलिए माल व दौलत कमाने के लिए उनपर हराम-हलाल की कोई मज़हबी पाबन्दी नहीं लगानी चाहिए।

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह॰) के सामने इसी ख़याल का इज़हार किया गया। इस लेख में मौलाना (रह॰) ने इसी ख़याल का निहायत तर्कपूर्ण और प्रभावकारी जवाब दिया है। उन्होंने बताया है कि मुसलमानों की बदहाली क्यों है और उसका अस्ल इलाज क्या है।

यह लेख उर्दू माहनामा 'तर्जमानुल-क़ुरआन' मई 1936 ई॰ के अंक में 'कैशे-मरदाँ न कि मज़हबे-गोसफ़न्दाँ' के नाम से प्रकाशित हुआ और मौलाना के लेखों के संग्रह 'तनक़ीहात' में इसे शामिल किया गया। ज़रूरत और फ़ायदे को देखते हुए इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि॰) ने इसे हिन्दी में तर्जमा कराके प्रकाशित कराया। ख़ुदा हमारी कोशिश को क़बूल करे और इसे मुसलमानों के लिए मुफ़ीद बनाए।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट
दिल्ली

मुसलमानों की बदहाली का अस्ल इलाज

सवाल

ब्याज (सूद) के मसले पर लिखे गए मेरे लेखों को देखकर एक ख़याल का बार-बार इज़हार किया गया है। वह ख़याल यह है कि “मौजूदा दौर में पूँजीवादी व्यवस्था (सरमायादारी निज़ाम) राजनीतिक ताक़त के साथ हमारे आसपास के सम्पूर्ण आर्थिक जगत् पर छा चुका है। अर्थव्यवस्था की गाड़ी पूँजीवादी उसूलों के पहियों पर चल रही है। पूँजीपति लोग ही उसको चला रहे हैं और वही क़ौमें उसके ज़रिए से तरक़्क़ी की मंज़िल की तरफ़ बढ़ रही हैं, जिनके लिए दौलत की पैदावार और ख़र्च के बारे में कोई मज़हबी या अख़लाक़ी (नैतिक) पाबन्दी नहीं है। दूसरी तरफ़ हमारी एकता व सामूहिक ताक़त बिखर चुकी है। दुनिया की आर्थिक व्यवस्था को बदलना तो दरकिनार हम ख़ुद अपनी क़ौम में भी इस्लामी आर्थिक व्यवस्था को नए सिरे से क़ायम करने की ताक़त नहीं रखते। अब अगर हमारी मज़हबी पाबन्दियाँ हमको ज़माने की चलती हुई आर्थिक व्यवस्था में पूरा-पूरा हिस्सा लेने से रोक दें तो नतीजा इसके सिवा कुछ न होगा कि हमारी क़ौम आर्थिक तरक़्क़ी और ख़ुशहाली के संसाधनों से फ़ायदा उठाने में दूसरी क़ौमों से पीछे रह जाएगी। हम ग़रीब होते जाएँगे और हमारी पड़ोसी क़ौमें दौलतमन्द होती चली जाएँगी। फिर यह हमारी आर्थिक कमज़ोरी हमको राजनीतिक, नैतिक और सांस्कृतिक हैसियत से भी निम्न व कमज़ोर कर देगी। यह सिर्फ़ वहम और शक नहीं है, बल्कि जो कुछ हो रहा है उससे यही नतीजा हमें नज़र आ रहा है और भविष्य में हमारा जो कुछ अंजाम होनेवाला है, उसके लक्षण कुछ ऐसे धुँधले नहीं हैं कि उनको न देखा जा सकता हो। अतः हमें सिर्फ़ शरीअत का क़ानून बनाने से क्या फ़ायदा? इस्लाम के आर्थिक सिद्धान्तों (मआशी

उसूलों) को बयान करने से क्या हासिल? हमें यह बताओ कि इन हालात में इस्लामी क़ानून की पाबन्दी के साथ हमारे लिए अपनी आर्थिक हालत को सम्भालने और तरक़्क़ी की मंज़िलें तय करने का भी कोई रास्ता है? अगर नहीं है तो दो सूरतों में से एक सूरत यक़ीनी तौर पर पेश आएगी—या तो मुसलमान बिलकुल तबाह हो जाएँगे या फिर वे भी दूसरी क़ौमों की तरह मजबूर होंगे कि ऐसे तमाम क़ानूनों की पाबन्दी से आज़ाद हो जाएँ जो ज़माने का साथ नहीं दे सकते।"

जवाब

यह सवाल सिर्फ़ ब्याज (सूद) ही के मसले तक सीमित नहीं है। अस्ल में इसका दायरा बहुत बड़ा है।

अगर ज़िन्दगी के तमाम विभागों में से सिर्फ़ अर्थव्यवस्था (Economic System) ऐसी होती जिसपर एक ग़ैर-इस्लामी व्यवस्था छा गई होती तो शायद मामला कम गम्भीर होता, मगर अस्ल स्थिति की गवाही कुछ और है। अपने आसपास की दुनिया पर नज़र डालिए, ख़ुद अपने हालात का जाइज़ा लेकर देखिए। ज़िन्दगी का कौन-सा विभाग ऐसा पाया जाता है जिसपर ग़ैर-इस्लामी निज़ाम नहीं छाया हुआ है। क्या एतिक़ाद (आस्था) और सोच व विचारों पर नास्तिकता व दुनियापरस्ती नहीं छा चुकी या कम-से-कम शक-सन्देह का साया नहीं? क्या शिक्षा पर ख़ुदा से अनभिज्ञता और उसके इनकार पर आधारित विचार छाए हुए नहीं? क्या संस्कृति और सभ्यता पर फ़िरंगीयत (अंग्रेज़ियत) छाई हुई नहीं? क्या समाज की जड़ों तक में पश्चिमवादिता उतर नहीं गई है? क्या अख़लाक़ (नैतिक आचरण) उसके ग़लबे से सुरक्षित हैं? क्या हमारे मामले उसके असर से आज़ाद हैं? क्या क़ानून, राजनीति और शासन के मूलभूत सिद्धान्तों और व्यावहारिक दृष्टिकोणों में से कोई चीज़ भी उसके असर से पाक है।

जब हाल यह है तो आप अपने सवाल को अर्थव्यवस्था और उसके भी सिर्फ़ एक पहलू तक क्यों सीमित रखते हैं? उसको विस्तृत कीजिए, पूरी ज़िन्दगी पर फैला दीजिए। यूँ कहिए कि ज़िन्दगी के दरिया ने अपना रुख़

बदल दिया है। पहले वह उस रास्ते पर बह रहा था, जो इस्लाम का रास्ता था, अब वह उस रास्ते पर बह रहा है जो ग़ैर-इस्लाम का रास्ता है। हम उसके रुख़ को बदलने की ताक़त नहीं रखते। हममें इतनी ताक़त भी नहीं कि उसके बहाव के ख़िलाफ़ तैर सकें। हमें ठहरने में भी बरबाद होने का अन्देशा है। अब हमें कोई ऐसी राह बताओ कि हम मुसलमान भी रहें और इस दरिया के बहाव पर अपनी कश्ती को छोड़ भी दें। काबा की तरफ़ सफ़र का इरादा भी करें और उस क़ाफ़िले का साथ भी न छोड़ें जो तुर्किस्तान की तरफ़ जा रहा है। हम अपने विचारों, दृष्टिकोणों, उद्देश्यों, जीवन-सिद्धान्तों और काम करने के तरीक़ों में ना-मुस्लिम भी हों और फिर मुस्लिम भी हों। अगर इन विरोधी चीज़ों को एक साथ जमा करने की कोई सूरत तुमने न निकाली तो नतीजा यह होगा कि या तो हम इसी दरिया के तट पर मर रहेंगे या फिर इस्लाम का लेबल जो हमारी कश्ती पर लगा हुआ है एक दिन खुरच डाला जाएगा और यह कश्ती भी दूसरी कश्तियों के साथ दरिया की धारा पर बहती नज़र आएगी।

हमारे खुले विचारों और 'आधुनिकतावादी' लोग जब किसी मसले पर बात करते हैं तो उनकी आख़िरी दलील, जो उनके नज़दीक सबसे मज़बूत दलील है, यह होती है कि ज़माने का रंग यही है, हवा का रुख़ इसी तरफ़ है, दुनिया में ऐसा ही हो रहा है। फिर हम उसका विरोध कैसे कर सकते हैं और विरोध करके ज़िन्दा कैसे रह सकते हैं! नैतिकता (अख़लाक़) का सवाल हो, वे कहेंगे कि दुनिया के अख़लाक़ का पैमाना बदल चुका है। मतलब यह निकला कि मुसलमान अख़लाक़ के उस पुराने स्तर पर कैसे क़ायम रहें? परदे पर बहस हो तो उनका कहना होगा कि दुनिया से परदा उठ चुका है। मतलब यह हुआ कि जो चीज़ दुनिया से उठ चुकी है, उसको मुसलमान कैसे न उठाएँ! शिक्षा पर बात हो तो उनकी आख़िरी दलील यह होगी कि दुनिया में इस्लामी शिक्षा की माँग ही नहीं। मतलब यह कि मुसलमान बच्चे वह चीज़ बनकर कैसे निकलें जिसकी माँग नहीं है और वह माल क्यों न बनें जिसकी माँग है! सूद या ब्याज पर तक़रीर हो तो उनकी बात का निचोड़ यह होगा कि अब दुनिया का काम इसके बग़ैर नहीं चल सकता। मानो कि मुसलमान

किसी ऐसी चीज़ से परहेज़ कैसे कर सकते हैं जो अब दुनिया का काम चलाने के लिए ज़रूरी हो गई है। मतलब यह कि संस्कृति, समाज, नैतिकता, शिक्षा, क़ानून, राजनीति और ज़िन्दगी के दूसरे मैदानों में से जिस मैदान में भी वे इस्लाम के सिद्धान्तों (उसूलों) से हटकर अंग्रेज़ियत की पैरवी करना चाहते हैं, इसके लिए ज़माने का रंग और हवा का रुख़ और दुनिया की रफ़्तार वह आख़िरी दलील होती है, जो उस पश्चिम की पैरवी या हक़ीक़त में उस आंशिक इर्तिदाद (दीन से फिर जाने) के जाइज़ होने पर दोटूक दलील समझकर पेश की जाती है और यह ख़याल किया जाता है कि इस्लामी इमारत के हिस्सों में से हर उस हिस्से को ख़त्म कर देना फ़र्ज़ है जिसपर इस दलील से हमला किया जाए।

हम कहते हैं कि तोड़-फोड़ के ये सुझाव जिनको तुम विभिन्न शक्लों में पेश करते हो उनको मिलाकर एक मुकम्मल प्रस्ताव क्यों नहीं बना लेते? मकान की एक-एक दीवार, एक-एक कमरा और एक-एक दालान को गिराने के अलग-अलग सुझाव पेश करने और हर एक पर एक-एक व्यक्ति के साथ बहस करने में वक़्त बेकार होता है क्यों नहीं कहते कि यह पूरा मकान गिरा देने की ज़रूरत है, क्योंकि इसका रंग ज़माने के रंग से अलग है, इसका रुख़ हवा के रुख़ से फिरा हुआ है और इसकी बनावट उन मकानों से किसी तरह नहीं मिलती जो अब दुनिया में बन रहे हैं।

जिन लोगों के हक़ीक़ी विचार यही हैं उनसे तो बहस करना ही बेकार है, उसके लिए तो साफ़ और सीधा जवाब यही है कि इस मकान को गिराने और इसकी जगह दूसरा मकान बनाने की तकलीफ़ आप क्यों उठाते हैं? जो दूसरा अच्छे डिज़ाइन का और अच्छा दिखाई देनेवाला तथा अच्छे रंग का मकान आपको पसन्द आए उसमें चले जाएँ। अगर दरिया के धारे पर बहने का शौक़ है तो उस नाव का लेबल ख़ुरचने की तकलीफ़ भी क्यों उठाइए? जो नाव पहले से बह रही हैं, उन्हीं में से किसी में सवार हो जाइए! जो लोग अपने विचारों, अपने अख़लाक़, अपनी सामाजिकता, अपनी अर्थव्यवस्था, अपनी शिक्षा, मतलब यह कि अपनी किसी चीज़ में भी मुसलमान नहीं हैं और मुसलमान रहना नहीं चाहते, उनके नाम को मुसलमान बने रहने से

इस्लाम का कोई फ़ायदा नहीं, बल्कि सरासर नुक़सान है। वे ख़ुदापरस्त (ईशपरायण) नहीं, बल्कि मन की इच्छा के ग़ुलाम और मौक़ापरस्त हैं। अगर दुनिया में बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) का ग़लबा हो जाए तो वे बुतों को पूजने लगेंगे। अगर दुनिया में नंगा रहने का चलन आम हो जाए तो वे यक़ीनन अपने कपड़े उतार फेंकेंगे। अगर दुनिया गन्दगी खाने लगे तो यक़ीनन वे कहेंगे कि गन्दगी ही पाकीज़गी है और पाकीज़गी तो सरासर गन्दगी है। उनके दिल और दिमाग़ ग़ुलाम हैं और ग़ुलामी ही के लिए बनाए गए हैं।

आज अंग्रेज़ियत का बोलबाला है, इसलिए अपने अन्दर से लेकर बाहर के एक-एक कोने तक वे अंग्रेज़ बनना चाहते हैं। कल अगर हबशियों का ग़लबा हो जाए तो यक़ीनन वे हबशी बनेंगे। अपने चेहरों पर कालिख लगाएँगे, अपने होंठ मोटे करेंगे, अपने बालों में हबशियों जैसा घुँघरीलापन पैदा करेंगे। हर उस चीज़ की पूजा करने लगेंगे जो हबश से उनको पहुँचेगी। ऐसे ग़ुलामों की इस्लाम को बिलकुल ज़रूरत नहीं है। ख़ुदा की क़सम! अगर करोड़ों मुसलमानों में से इन सब मुनाफ़िक़ों (पाखण्डियों) और ग़ुलाम-फ़ितरत (दासता की प्रवृत्ति) वाले लोगों के नाम काट दिए जाएँ और दुनिया में सिर्फ़ कुछ हज़ार वे मुसलमान रह जाएँ जिनकी पहचान यह हो—

> "वे अल्लाह के प्रिय हों और अल्लाह उनका प्रिय हो। वे आस्थावानों के प्रति नर्म और धर्म-विरोधियों पर सख़्त हों। अल्लाह के मार्ग में संघर्ष करनेवाले हों और किसी निन्दा करनेवाले की निन्दा का उन्हें डर न हो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-54)

तो इस्लाम अब से कई गुना ताक़तवर होगा और इन करोड़ों का निकल जाना उसके हक़ में ऐसा होगा जैसे किसी मरीज़ के जिस्म से पीप और ख़राब ख़ून का निकल जाना।

> "हमें डर है कि हमपर मुसीबत आ जाएगी।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-52)

यह आज कोई नई आवाज़ नहीं है। बहुत पुरानी आवाज़ है, जो

मुनाफ़िक़ों (पाखण्डियों व धोखेबाज़ों) की ज़बान से बुलन्द होती रही है। यही आवाज़ निफ़ाक़ (कपट) की उस बीमारी का पता देती है, जो दिलों में छिपी हुई है। इसी आवाज़ को बुलन्द करनेवाले हमेशा इस्लाम के दुश्मनों के कैम्प की तरफ़ लपकते रहे हैं। हमेशा से उन्होंने अल्लाह की क़ायम की हुई हदों को पाँव की बेड़ियाँ और गले का फन्दा ही समझा है। हमेशा से उनको ख़ुदा और उसके रसूल के अहकाम (आदेशों) का पालन करना भारी ही गुज़रता रहा है। फ़रमाँबरदारी में जान व माल की बरबादी और नाफ़रमानी में दुनिया की ज़िन्दगी की सारी कामयाबियाँ हमेशा से उनको नज़र आती रही हैं। अतः उनके लिए ख़ुदा के क़ानून को न कभी बदला गया था, न अब बदला जा सकता है और न कभी बदला जाएगा। यह शरीअत बुज़दिलों और नामर्दों के लिए नहीं उतरी है। मन की इच्छा के दासों और दुनिया के ग़ुलामों के लिए नहीं उतरी है। हवा के रुख़ पर उड़नेवाले कूड़ा-करकट और पानी के बहाव पर बहनेवाले ज़मीन के कीड़े-मकोड़े और हर रंग में रंग जानेवाले बेरंगों के लिए नहीं उतरी है। यह उन बहादुर शेरों के लिए उतरी है जो हवा का रुख़ बदलने का इरादा और हिम्मत रखते हों, जो दरिया के बहाव से लड़ने और उसकी धारा को फेर देने की हिम्मत रखते हों, जो अल्लाह के रंग को दुनिया के हर रंग से ज़्यादा प्रिय और महबूब रखते हों और उसी रंग में तमाम दुनिया को रंग देने का हौसला रखते हों। मुसलमान जिसका नाम है, वह दरिया के बहाव पर बहने के लिए पैदा ही नहीं किया गया है। उसकी पैदाइश का तो मक़सद ही यह है कि ज़िन्दगी के दरिया को उस रास्ते पर चला दे जो उसके ईमान और अक़ीदे (आस्था) में सीधा रास्ता है। सिराते-मुस्तक़ीम यानी सीधा और सच्चा रास्ता है। अगर दरिया ने अपना रुख़ उस रास्ते से फेर दिया तो इस्लाम के दावे में वह आदमी झूठा है जो उस बदले हुए रुख़ पर बहने के लिए राज़ी हो जाए। हक़ीक़त में जो सच्चा मुसलमान है वह दरिया के उस ग़लत बहाव से लड़ेगा। उसका रुख़ फेरने की कोशिश में अपनी पूरी ताक़त लगा देगा। कामयाबी और नाकामी की उसको बिलकुल परवाह न होगी। वह हर उस नुक़सान को बरदाश्त कर लेगा जो उस लड़ाई में पहुँचे या पहुँच सकता हो। यहाँ तक कि अगर दरिया के बहाव से

लड़ते-लड़ते उसके बाज़ू टूट जाएँ, उसके जोड़ व बंद ढीले हो जाएँ और पानी की लहरें उसको अध-मरा करके किसी किनारे पर फेंक दें, तब भी उसकी आत्मा कभी भी हार न मानेगी। एक पल के लिए भी उसके दिल में अपनी इस ज़ाहिरी नाकामी पर अफ़सोस या दरिया की धारा में बहनेवाले हक़ के इनकारियों या मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) की कामयाबियों की तरफ़ आकर्षित होने की भावना पैदा नहीं हो सकती।

क़ुरआन तुम्हारे सामने है, नबियों (अलैहि०) की ज़िन्दगियों के हालात तुम्हारे सामने हैं। शुरू से लेकर आज तक के उन सब लोगों की ज़िन्दगियाँ तुम्हारे सामने हैं जिन्होंने इस्लाम का झण्डा उठाया था। क्या इन सबसे तुमको यह शिक्षा मिलती है कि हवा जिधर उड़ाए उधर उड़ जाओ? पानी जिधर बहाए उधर बह जाओ? ज़माना जो रंग अपनाए उसी रंग में रंग जाओ? अगर मामला यही होता तो किसी किताब के नाज़िल होने और किसी नबी के आने की ज़रूरत ही क्या थी? हवा की लहरें तुम्हारी हिदायत के लिए और दुनिया की ज़िन्दगी का बहाव तुम्हारी रहनुमाई के लिए और ज़माने के बदलाव तुम्हें गिरगिट का-सा रवैया सिखाने के लिए काफ़ी थे। ख़ुदा ने कोई किताब ऐसी नापाक शिक्षा देने के लिए नहीं भेजी और न इस मक़सद के लिए कोई नबी भेजा। उस ज़ाते-हक़ (अल्लाह) की तरफ़ से जो पैग़ाम भी आया है वह इसलिए आया है कि दुनिया जिन ग़लत रास्तों पर चल रही है, उन सबको छोड़कर एक सीधा रास्ता तय करे, उसके ख़िलाफ़ जितने रास्ते हों उनको मिटाए और दुनिया को उनसे हटाने की कोशिश करे। ईमानदारों का एक गरोह बनाए, जो न सिर्फ़ ख़ुद उस सीधे रास्ते पर चलें, बल्कि दुनिया को भी उसकी तरफ़ खींचकर लाने की कोशिश करें। नबियों (अलैहि०) और उनके माननेवालों ने हमेशा इसी मक़सद के लिए संघर्ष किया है। इस संघर्ष में तकलीफ़ें उठाई हैं। नुक़सान बरदाश्त किए हैं और जानें दी हैं। उनमें से किसी ने भी मुसीबतों के ख़ौफ़ से या फ़ायदे के लालच से ज़माने की रफ़्तार को कभी अपना पेशवा नहीं बनाया। अब अगर कोई शख़्स या कोई गरोह आसमानी हिदायत के बताए हुए रास्ते पर चलने में नुक़सान, मुश्किलें और ख़तरे देखता है और उनसे डरकर किसी ऐसे रास्ते पर जाना चाहता है

जिसपर चलनेवाले उसको .ख़ुशहाल, कामयाब और सरबुलन्द नज़र आते हैं तो वह शौक़ से अपने पसन्दीदा रास्ते पर जाए। लेकिन वह बुज़दिल और लालची इनसान अपने मन को और दुनिया को यह धोखा देने की कोशिश क्यों करता है कि वह .ख़ुदा की किताब और उसके नबी के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर भी उसकी पैरवी करनेवाला है? नाफ़रमानी .ख़ुद एक बड़ा जुर्म है। इसपर झूठ और फ़रेब और मुनाफ़क़त का इज़ाफ़ा करने का मक़सद आख़िर कौन-सा फ़ायदा उठाना है?

यह ख़याल कि ज़िन्दगी का दरिया जिस रुख़ पर बह रहा है उससे वह फेरा नहीं जा सकता, यह अक़्ल के हिसाब से भी ग़लत है और तजरिबा भी इसके ख़िलाफ़ गवाही देता है। दुनिया में एक नहीं, सैकड़ों इंक़िलाब आए और हर इंक़िलाब ने इस दरिया के रुख़ को बदला है। इसकी सबसे बेहतरीन मिसाल .ख़ुद इस्लाम ही में मौजूद है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) जब दुनिया में तशरीफ़ लाए तो ज़िन्दगी का यह दरिया किस रुख़ पर बह रहा था? क्या तमाम दुनिया पर कुफ़्र और शिर्क का बोलबाला न था? क्या अत्याचार और ज़ुल्म का राज न था? क्या इनसानियत को तबक़ों के ज़ालिमाना बँटवारे ने दाग़दार न कर रखा था? क्या अख़लाक़ पर अश्लीलता, सामाजिकता पर स्वार्थपरता (मफ़ाद-परस्ती) अर्थव्यवस्था पर ज़ालिमाना जागीरदारी व सरमायादारी (पूँजीवाद) और क़ानून पर अन्याय का क़ब्ज़ा न था? मगर एक अकेले व्यक्ति ने उठकर तमाम दुनिया को चैलेंज दे दिया, उन तमाम ग़लत विचारों और ग़लत तरीक़ों को रद्द कर दिया, जो उस वक़्त दुनिया में प्रचलित थे। उन सबके मुक़ाबले में अपना एक अक़ीदा और अपना एक तरीक़ा पेश किया और कुछ ही साल की थोड़ी मुद्दत में अपनी तबलीग़ और कोशिशों से दुनिया के रुख़ को फेरकर और ज़माने के रंग को बदलकर छोड़ा।

ताज़ा मिसाल

ताज़ा मिसाल साम्यवादी (Communist) आन्दोलन की है। उन्नीसवीं सदी में पूँजीवाद का प्रभुत्व अपनी इन्तिहा को पहुँच चुका था। हवा के रुख़

में हिलनेवाला कोई बुज़दिल उस वक़्त यह तसव्वुर भी नहीं कर सकता था कि जो व्यवस्था ऐसी हौलनाक सियासी और जंगी ताक़त के साथ दुनिया पर छाई हुई है उसको उलट देना मुमकिन है, मगर उन्हीं हालात में एक व्यक्ति कार्लमार्क्स नाम का उठा और उसने साम्यवाद का प्रचार करना शुरू किया। हुकूमतों ने उसका विरोध किया, देश से निकाला गया, देश-देश की ख़ाक छानता फिरा, तंगदस्ती और मुसीबत से दोचार हुआ, मगर मरने से पहले साम्यवादियों की एक ताक़तवर जमाअत (दल) पैदा कर गया, जिसने चालीस साल के अन्दर न सिर्फ़ रूस की सबसे ज़्यादा ख़ौफ़नाक ताक़त को उलटकर रख दिया, बल्कि तमाम दुनिया में पूँजीवादी व्यवस्था की जड़ें हिला दीं और अपना एक आर्थिक और सांस्कृतिक दृटिकोण इस ज़ोर के साथ पेश किया कि दुनिया में उसके माननेवालों की तादाद दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई और उन देशों के क़ानून भी उससे प्रभावित हुए, जिनपर पूँजीवादी हुकूमत गहरी जड़ों के साथ जमी हुई है।

तरक़्क़ी का रास्ता

इन्क़िलाब या उन्नति हमेशा ताक़त ही के असर से ज़ाहिर हुई है और ताक़त ढल जाने का नाम नहीं, ढाल देने का नाम है। मुड़ जाने को ताक़त नहीं कहते, मोड़ देने को कहते हैं। दुनिया में कभी नामर्दों और बुज़दिलों ने कोई इन्क़िलाब पैदा नहीं किया। जो लोग अपना कोई उसूल, ज़िन्दगी का कोई मक़सद, कोई नस्बुलऐन (लक्ष्य) न रखते हों, जो बुलन्द मक़सद के लिए क़ुरबानी देने का हौसला न रखते हों, जो दुनिया में सिर्फ़ ऐशो-आराम की सुहूलतें ही चाहते हों, जो हर साँचे में ढल जाने और हर दबाव से दब जानेवाले हों, ऐसे लोगों का ऐसा कोई कारनामा इनसानी इतिहास में नहीं पाया जाता कि जिसका ज़िक्र किया जा सके। इतिहास की रचना कर देना सिर्फ़ बहादुर मर्दों का काम है। उन्हींने अपनी जान-तोड़ कोशिशों और क़ुरबानियों से ज़िन्दगी के दरिया का रुख़ फेरा है। दुनिया की विचार-धाराओं को बदला है, अमल की राहों में इन्क़िलाब बरपा किया है। ज़माने के रंग में रंग जाने के बजाय ज़माने को ख़ुद अपने रंग में रंगकर छोड़ा है।

अतः यह न कहो कि दुनिया जिस रास्ते पर जा रही है, उससे वह फेरी नहीं जा सकती और ज़माने की जो रविश (नीति) है, उसकी पैरवी और अनुसरण किए बग़ैर कोई चारा नहीं है। मजबूरी का झूठा दावा करने के बजाय तुमको ख़ुद अपनी कमज़ोरी सच्चे दिल से स्वीकार करनी चाहिए, और जब तुम इसको स्वीकार कर लोगे तो तुमको यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि कमज़ोर के लिए दुनिया में न कोई मज़हब है, न कोई उसूल और न कोई क़ानून। उसको हर ताक़तवर से दबना पड़ेगा। हर ताक़तवर के आगे झुकना पड़ेगा। वह अपने किसी उसूल और किसी क़ानून का पाबन्द नहीं हो सकता। अगर कोई मज़हब उसके लिए अपने उसूल बदलता चला जाए तो वह सिरे से कोई मज़हब ही न रहेगा।

एक धोखा

यह भी एक धोखा है कि इस्लाम की पाबन्दियाँ तुम्हारी ख़ुशहाली और तरक़्क़ी में रुकावट हैं। आख़िर तुम इस्लाम की किस पाबन्दी का पालन कर रहे हो? कौन-सी पाबन्दी है जिससे तुम आज़ाद नहीं हुए? और कौन-सी हद है जिसको तुमने नहीं तोड़ा? तुमको जो चीज़ें तबाह कर रही हैं, उनमें से किसकी इजाज़त इस्लाम ने तुमको दी थी। तुम तबाह हो रहे हो अपनी फ़ुज़ूलख़र्चियों से जिनके लिए करोड़ों रुपये सालाना का ब्याज (सूद) तुम्हारी जेबों से साहूकारों के ख़ज़ाने में जा रहा है और करोड़ों रुपयों की जायदादें तुम्हारे क़ब्ज़े से निकलती जा रही हैं। क्या इस्लाम ने तुमको इसकी इजाज़त दी थी? तुमको ख़ुद तुम्हारी अपनी बुरी आदतें तबाह कर रही हैं। इस मुफ़लिसी (निर्धनता और ग़रीबी) की हालत में भी सिनेमा और खेल-तमाशे की जगहें तुम्हारी आबादी से भरी रहती हैं। तुममें का हर व्यक्ति लिबास, सिंगार और सजावट के सामानों पर अपनी हैसियत से अधिक ख़र्च करता है। तुम्हारी जेबों से हर महीने लाखों रुपए बेहूदा रस्मों और नुमाइशी और जाहिलाना कामों व हरकतों में ख़र्च हो जाते हैं। इनमें से किसको इस्लाम ने तुम्हारे लिए हलाल किया था? सबसे बड़ी चीज़ जिसने तुमको तबाह कर दिया है, वह ज़कात की अदायगी में ग़फ़लत और आपस में एक-दूसरे की

मदद करने से बेपरवाही है। क्या इस्लाम ने ये चीज़ें तुमपर फ़र्ज़ नहीं की थीं? अतः हक़ीक़त यह है कि तुम्हारी आर्थिक बरबादी इस्लामी पाबन्दियों के पालन करने का नतीजा नहीं है, बल्कि उनसे आज़ादी का नतीजा है। रही बात सूद (ब्याज) की पाबन्दी (प्रतिबंधित होने) की तो वह भी कहाँ क़ायम है? कम-से-कम 95 प्रतिशत मुसलमान बिना किसी हक़ीक़ी मजबूरी के ब्याज पर क़र्ज़ लेते हैं। क्या इस्लाम के अहकाम (आदेशों) की पाबन्दी इसी का नाम है? मालदार मुसलमानों में से भी एक बड़ा हिस्सा किसी-न-किसी शक्ल में सूद खा ही रहा है। बाक़ायदा साहूकारी न की तो क्या हुआ, बैंक और बीमा और सरकारी बांड्स और प्रोविडेंट फ़ण्ड्स का सूद तो अकसर व बेशतर मालदार मुसलमान खाते हैं। फिर वह सूद के हराम होने की क़ैद (पाबन्दी) कहाँ है, जिसपर तुम अपनी आर्थिक ख़स्ताहाली का इलज़ाम रखते हो?

अस्ल इलाज

अजीब मज़े की दलील है कि मुसलमानों की इज़्ज़त और क़ौमी ताक़त का दारोमदार दौलतमन्दी पर है और दौलत का दारोमदार आर्थिक तरक्क़ी और ख़ुशहाली के साधनों से फ़ायदा उठाने पर है और इन सबका दारोमदार सूद के जाइज़ होने पर है। मालूम होता है कि इन लोगों को अभी तक यही ख़बर नहीं कि इज़्ज़त और ताक़त का दारोमदार अस्ल में किस चीज़ पर है? सिर्फ़ दौलत हरगिज़ वह चीज़ नहीं है जो किसी क़ौम को इज़्ज़तदार और ताक़तवर बनाती हो। तुम्हारा एक-एक आदमी अगर लखपती और करोड़पती बन जाए, मगर तुममें चरित्र और किरदार (Character) की ताक़त न हो तो यक़ीन रखो कि दुनिया में तुम्हारी कोई इज़्ज़त न होगी। इसके बरख़िलाफ़ अगर तुममें हक़ीक़त में इस्लामी सीरत (चरित्र) मौजूद हो, तुम सच्चे और अमानतदार हो, लालच और ख़ौफ़ से दूर हो, अपने उसूल में सख़्त और अपने मामलात में खरे हो, हक़ को हक़ और फ़र्ज़ को फ़र्ज़ समझनेवाले हो, हराम और हलाल के फ़र्क़ को हर हाल में नज़र के सामने रखनेवाले हो और तुममें इतनी अख़लाक़ी ताक़त (चारित्रिक शक्ति) मौजूद हो कि किसी नुक़सान का ख़ौफ़ और किसी फ़ायदे का लाभ तुमको सच्चाई से न हटा सके और किसी क़ीमत पर तुम्हारा ईमान न ख़रीदा जा सके तो दुनिया में तुम्हारी

साख क़ायम हो जाएगी, दिलों में तुम्हारी इज़्ज़त बैठ जाएगी। तुम्हारी बात का वज़न लखपति की पूरी दौलत से अधिक होगा। तुम झोपड़ियों में रहकर और पेवन्द लगे कपड़े पहनकर भी दौलतमंदों और ऐशो-इशरत में रहनेवालों से अधिक सम्मान और इज़्ज़त की नज़र से देखे जाओगे और तुम्हारी क़ौम को ऐसी ताक़त हासिल होगी जिसको कभी नीचा नहीं दिखाया जा सकता। सहाबा (नबी सल्ल॰ के साथियों) के दौर के मुसलमान कितने ग़रीब और तंगहाल थे। झोपड़ियों और कम्बल के ख़ेमों में रहनेवाले, सभ्यता की शानो-शौकत से अपरिचित, न उनके पास लिबास दुरुस्त, न खाने-पीने के सामान दुरुस्त, न हथियार दुरुस्त, न सवारियाँ शानदार, मगर उनकी जो धाक और इज़्ज़त दुनिया में थी, वह न उमवी दौर में मुसलमानों को नसीब हुई, न अब्बासी दौर में और न बाद के किसी दौर में। उनके पास दौलत न थी मगर चरित्र (किरदार) की ताक़त थी जिसने दुनिया में अपनी इज़्ज़त और महानता का सिक्का बिठा दिया था। बादवालों के पास दौलत आई, हुकूमत आई, सभ्यता की शानो-शौकत आई, मगर कोई चीज़ भी चरित्र की कमज़ोरी का बदल उपलब्ध न कर सकी।

तुमने इस्लामी इतिहास (तारीख़) का सबक़ तो भुला ही दिया है, मगर दुनिया की जिस क़ौम का इतिहास चाहो उठाकर देख लो, तुमको एक मिसाल भी ऐसी न मिलेगी कि किसी क़ौम ने सिर्फ़ सुहूलत-पसन्दी और आराम-तलबी और अवसरवादिता से इज़्ज़त और ताक़त हासिल की हो। तुम किसी ऐसी क़ौम को इज़्ज़तदार और सरबुलन्द न पाओगे जो किसी उसूल और अनुशासन (Discipline) की पाबन्द न हो। किसी बड़े मक़सद के लिए तंगी, मशक़्क़त और कठिनाई न बरदाश्त कर सकती हो और अपने उसूल व मक़सद के लिए अपने मन की इच्छा को और ख़ुद अपनी जानों को भी क़ुरबान कर देने का जज़बा न रखती हो। यह अनुशासन और उसूलों की पाबन्दी और बड़े मक़सदों के लिए राहत, ख़ुशहाली और मुनाफ़े की क़ुरबानी किसी-न-किसी रंग में तुमको हर जगह नज़र आएगी। इस्लाम में इसका रंग कुछ और है और दूसरी तरक़्क़ीयाफ़्ता (विकसित) क़ौमों में कुछ और। यहाँ से निकलकर तुम किसी और सांस्कृतिक व्यवस्था (निज़ामे-तमद्दुन) में

जाओगे तो वहाँ भी तुमको इस रंग में न सही किसी दूसरे रंग में एक-न-एक नियम का पाबन्द होना पड़ेगा। एक-न-एक अनुशासन की जकड़न बरदाश्त करनी ही होगी। कुछ ख़ास उसूलों के शिकंजे में हर हाल में तुम जकड़े जाओगे। तुमसे किसी मक़सद और किसी उसूल के लिए क़ुरबानी की माँग ज़रूर की जाएगी। अगर इसका हौसला तुममें नहीं है, अगर तुम सिर्फ़ नरमी और सुहूलत और मिठास ही के मतवाले हो और किसी सख़्ती, किसी कड़वाहट को सहन करने की ताक़त तुममें नहीं है तो इस्लाम की सीमा और बन्दिशों से निकलकर जहाँ चाहो जाकर देख लो, कहीं तुमको इज़्ज़त का मक़ाम न मिलेगा और किसी जगह ताक़त का ख़ज़ाना तुम न पा सकोगे। क़ुरआन ने इस पूरे क़ायदे को सिर्फ़ चार लफ़्ज़ों में बयान किया है और वे चार लफ़्ज़ ऐसे हैं जिनकी सच्चाई पर दुनिया का पूरा इतिहास गवाह है। कहा गया—

"इन-न मअल-उसूरि युसरा"

(क़ुरआन, सूरा-94 इनशिराह, आयत-6)

अर्थात्, बेशक तंगी के साथ कुशादगी भी है।

कुशादगी (युस्र) का दामन हर हाल में तंगी (उस्र) के साथ.जुड़ा हुआ है। जिसमें तंगहाली व कठिनाई को बरदाश्त करने की ताक़त नहीं, वह कभी कुशादगी व ख़ुशहाली (यानी युस्र) को नहीं पा सकता!

(तर्जमानुल-क़ुरआन, मई 1936 ई॰)

☆☆